MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

December 2018
Issue-29, Vol-01

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

विद्येविना मति गेली, मतीविना नीति गेली
नीतिविना गति गेली, गतिविना वित्त गेले
वित्तविना शूद्र खचले, इतके अनर्थ एका अविद्येने केले

-महात्मा ज्योतीराव फुले

❖ **विद्यावार्ता** या आंतरविद्याशाखीय बहूभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. **न्यायक्षेत्र:बीड**

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat**.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

53	डॉ.देविदास क. बामणे	दुष्यन्तकुमार जी के गज़लों में सामाजिक विमर्श	138
54	डॉ. राजेश भामरे	समकालीन हिन्दी गजलों में धार्मिक चेतना	141
55	प्रा. दादासाहेब खांडेकर	वर्तमान दशक की हिंदी गज़ल में आम आदमी	144
56	डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील	दुष्यंतकुमार के गजलों में सामाजिक विमर्श	146
57	ज्वाज्जल्या गंगुला	सामाजिक यथार्थ का मंजर अभिव्यक्त करती ग़जलें	149
58	प्रा. सौ मनिषा कल्याण तावरे	21 वी सदी की हिन्दी गजलों में : नारी विमर्श	151
59	प्रा. डॉ. मुकेश गायकवाड 'मुकेशराजे	21 वीं सदी की हिंदी गजलों में व्यक्त राजनीतिक विमर्श	153
60	डॉ प्रमोद एम चौधरी	21 वीं सदी का हिंदी ग़ज़ल साहित्य : विविध आयाम	156
61	प्रा.देशपांडे आर के. प्रा.म्हस्के एन.आर	समकालीन हिंदी गजल में नारी विमर्श	158
62	संगिता पंढरीनाथ मांडगे	समकालीन हिंदी गजल – स्त्री विमर्श।	160
63	राजाराम बाबुराव तायडे	चन्द्रसेन विराट की गजलों का अनुशीलन	162
64	प्रा.डॉ. बिक्कड ए.एसप्रा.डॉ. रमाकांत शारंगधर आपरे	'वर्तमान गजलों में राजनीतिक चेतना'	165
65	रेवनसिध्द काशिनाथ चव्हाण	समकालीन गजल : विविध विमर्श	167
66	डॉ. संजय म. महेर	दुष्यंत कुमार की गजलों में चित्रित सामाजिक विमर्श	169
67	सतीशकुमार पडोलकर	समकालीन हिंदी गजल : सांप्रदायिक सद्भाव	171
68	डॉ शीला भास्कर	देह का विमर्श बनाम स्त्री का बाजार	172
69	डॉ. शहनाज महेमुदशा सय्यद	हिंदी गज़ल में सामाजिकता	174
70	प्रा. दहातोंडे सोपान भानुदास	समकालीन हिंदी गज़लःराजनीतिक विमर्श चुनाव के विशेष संदर्भ में	177
71	डॉ.श्वेता चौधारे,	21 वी सदी की हिंदी गज़लों में ग्राम्य विमर्श	180
72	अंबेकर वसीम फातेमा अब्दुल अजीज	इक्कीसवीं सदी की हिंदी गजल में नारी–विमर्श	184
73	प्रा. टेकाळे रागिनी पुरुषोत्तम	समकालीन हिंदी गज़लः राजनीतिक विमर्श	187
74	प्रा.मनिषा रामचंद्र प्रा आरती गाडीलकर	दुष्यंतकुमार की गजलों में अंकित सामाजिक संवेदना	189
75	प्रा.डॉ.सुनीता मोटे	इक संगीन लड़ाई है ग़ज़ल	191
76	डॉ. नवनाथ येठेकर	दुष्यन्त कुमार : कालजयी सामाजिक गजलकार	194
77	डॉ..युवराज राजाराम मुळये	शमषेर की गजलों में सामाजिकता	196
78	प्रा. डॉ. सुनीता कावळे	आधुनिक गजलकारों की गजलों मे सामाजिक चेतना	198

21 वी सदी की हिंदी ग़ज़लों में ग्राम्य विमर्श

डॉ. श्वेता चौधारे

ग़ज़ल फारसी से होते हुए हिंदी और उर्दु में आयी साहित्य की विधा है। ग़ज़ल जैसी काव्य विधा को फारसी से हिंदी में लाकर अमीर खुसरो वास्तव में साहित्य की गंगाजमुनी संस्कृति के पुरोधा बन गए। 13 वी शती में खुसरो के द्वारा हिंदुस्थानी जमीन में ग़ज़ल का बोया गया बीज आज भाषा के संकूचित गलियारों से निकल अपना विस्तार करते हुए अपने रस के जादू से विश्व को आह्लादित कर रहा है। हिंदुस्थान ने जिस भाषिक अलगाव के जख्मों को सदियों से सहा है, उस पर मरहम का काम ग़ज़ल कर रही है। एक जमाने में प्रेम के अनन्य भावों तक सीमित ग़ज़ल का संसार आज बहूरंगी होकर नानाविध विषय एवं इन विषयों की गहनता को नापता हुआ आगे बढ रहा है। हिंदी के ग़ज़ल संसार में प्रेम पथ की करालता से आजादी के पश्चात मोहभंग की स्थिति तक और वर्तमान की देश दशा का क्रूर साक्षात्कार, आम आदमी के हक्क– अधिकारों की पैरवी में गूंजती आवाजों को स्थान मिला है।

व्यक्ति मन के नाना भावों के साथ न केवल हर्ष–अवसादि बल्कि समाज का यथार्थ चित्रण बड़ी बेबाकी के साथ ग़ज़लों में अवतीर्ण हुआ है। वर्तमान युग की ग़ज़लों में प्रेमी मन की थाह के साथ इस युग के सर्वसामान्य, सर्वहारा वर्ग की व्यथा, दुख–दर्द का गहराई के साथ वर्णन हुआ है। उदाहरण के रूप में हम दुष्यंतकुमार की ग़ज़लों को देख सकते है, जिसमें हम निर्भीक, बेलैस और व्यवस्था के विरूद्ध उठती उंची आवाज को देख चुके है। दुष्यंतकुमार की 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह की 52 ग़ज़लें जहां एक ओर आम आदमी की भावनाओं को अभिव्यक्त करती है, वहीं शासन–व्यवस्था की विसंगतियों–विद्रुपताओं पर खुलकर प्रहार करते हुए एक साफ–सुथरी, समन्यायी, सामाजिक व्यवस्था की मांग करती है।

विधा के आधार पर किए गए हिंदी साहित्य के वर्गीकरण में पद्य के अंतर्गत अपने बदलते विषय संसार एवं शैली के कारण हिंदी कविता अक्सर और अधिक चर्चा के केंद्र में रही है। जिसके कारण हिंदी कविता का संसार समीक्षा, आलोचना का अधिकाधिक अधिकारी बनता गया। जब कि हिंदी कविता की तुलना में हिंदी ग़ज़लें उचित आलोचकों के अभाव में साहित्य के हाशिए पर ही पाई गई। आलोचकों के इसी रवैये के बारे में दैनिक पत्र 'जनसत्ता' ने भी अपने 5 नवंबर 2018 के स्तंभ लेखन में 'साहित्य : हिंदी ग़ज़ल और आलोचकीय बेरूखी' नाम से लेखन कर इस ओछी मानसिकता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य के विकास में ग़ज़लों के योगदान और स्थान पर त्रिलोचन शास्त्री ने सटीकता से अपना मत देते हुए कहा था – ''हिंदी ग़ज़ल की अभी कोई पहचान बन नहीं पाई है।'' हिंदी की ग़ज़लों की स्थिति देख वे हिंदी ग़ज़लों को अपने प्रारंभिक काल का मानते थे।[1]

काव्यविधा के रूप में हिंदी ग़ज़ल के अहमियत पर चंद्रसेन विराट ने कहा था – ''आज के यांत्रिकी जीवन में जो कुछ रसतत्व शेष रह गया है, उसकी पिपासा शांत करने के लिए गीत ग़ज़ल ही आज की वह काव्य विधाएं है, जो सबसे अधिक लिखी–पढी जा रही है।''[2] बावजूद इन सबके हिंदी ग़ज़ल विधा अपने लक्ष्य की ओर अग्रेसित है। जिसके कारण 21 वी शती की हिंदी ग़ज़लों का जिक्र करते हुए हमारे सामने कई ग़ज़लकारों के नाम उम्मीद के साथ उभरते है। जिनमें ज्ञान प्रकाश विवेक के 'गुफ्तगू अवाम से है', 'आंखो में आसमान', 'धूप के हस्ताक्षर' (ग़ज़ल संग्रह); जहीर कुरैशी के 'भीड़ में सबसे अलग', 'समंदर ब्याहने आया नहीं है', 'चांदनी का दुःख', 'पेड़ तन कर भी नहीं टूटा' (ग़ज़ल संग्रह); सुल्तान अहमद के 'नदी की चीख़', 'ख़ामोशियों में बन्द ज्वालामुखी' (ग़ज़ल–संग्रह);अशोक अंजुम की 'मेरी प्रिय ग़ज़लें', 'मुस्कानें हैं ऊपर–ऊपर', 'अशोक अंजुम की प्रतिनिधि ग़ज़लें', 'तुम्हारे लिये ग़ज़ल', 'जाल के अन्दर जाल मियां'; आलोक श्रीवास्तव के 'आमीन' (ग़ज़ल संग्रह); इन्दु श्रीवास्तव के 'कहिए दीवान' (ग़ज़ल संग्रह), नचिकेता के 'आइना दरका हुआ' (ग़ज़ल संग्रह); देवेन्द्र आर्य के 'किताब के बाहर', 'ख्वाब–ख्वाब खामोशी', 'आग बीनती औरतें', 'उमस' (ग़ज़ल संग्रह); दरवेश भारती के ग़ज़ल संग्रह जिनमें 'रौशनी का सफ़र', 'अहसास की लौ'; द्विजेन्द्र 'द्विज' के 'जन–गण–मन' (ग़ज़ल संग्रह); दीप्ति मिश्र के 'है तो है' (ग़ज़ल संग्रह), विनय मिश्र के 'सच और है' (ग़ज़ल संग्रह) इसके अलावा लक्ष्मण दूबे, सविता चढ्ढा, सुल्तान अहमद, नूर मुहम्मद नूर, मुन्नवर राणा, मधुवेश, देवमणि पांडेय, डॉ. उर्मिलेश और कई ग़ज़लकारों के नाम शुमार किए जा सकते है।

21 वी सदी की कई ग़ज़लें आम आदमी की जिंदगी की दास्तान है, जो उसी आम इन्सान की भूख, उस पर टूटनेवाली महंगाई की मार का जीवंत चित्रण करती है, तो कभी समता–समानता का चोला ओढे लोकतंत्र की पोल खोलती है, कभी सरेआम होनेवाली धोखाधड़ी, व्यवस्था के शोषण – भ्रष्टाचार, वर्गभेद से उपजी अमानवीयता, यांत्रिकीकरण से उत्पन्न अजनबीपन, आपसी द्वेष और मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन की कहानियां सुनाती है। प्रस्तुत शोधालेख में हिंदी ग़ज़लों में चित्रित ग्राम्य विमर्श पर प्रकाश डालने का प्रयास हुआ है। आधुनिक सदी का ग़ज़लकार समाज के हर घटना क्रम को न सिर्फ ऑख खोलकर देखता है, बल्कि उसके पीछे की वास्तविकता समझने की कोशिश करता है। राजनैतिक गलियारों में राजनीति का हथियार बनते आए गांव किस तरह प्रगति कर रहे है, यह डी.एम. मिश्र की ग़ज़ल 'गांवों का उत्थान देखकर आया हूँ' द्वारा देखा जा सकता है, जहां गांवों के भ्रष्ट

की जगह अपनी जिंदगी सजाने–सवारने में लगे है। मनरेगा की मजूरी को हडपकर नहरों का अस्तित्व केवल कागज पर रखा जाता है। महिलाओं को सत्ता में मिले आरक्षण की असलियत भी गजलकार खोलता है। जहां –

लछमिनिया थी चुनी गई परधान मगर / उसका 'पती प्रधान' देखकर आया हूँ।
बंगले के अंदर में जाने क्या होगा /अभी तो केवल लॉन देखकर आया हूँ।[3]

देश की सदन में गांवों के विकास को लेकर हर रोज चर्चा होती है, पर इस भ्रष्ट व्यवस्था में भ्रष्ट हो चुकी देश की महानता गजलकार की आंखों से छूटी नहीं।

आधुनिकीकरण की इस तेज आंधी ने जहां हमें कई नई चीजों से वाकिफ किया वहीं आंख खोलकर देखें तो हमसे बहुत कुछ छीन लिया है। गांवो का रंग–ढंग बदलकर वहां शहरों का फैशन अपनी जगह बना रहा है। गांवों की संस्कृति, लोकजीवन, रीति–रिवाज, परंपराएं इतना ही नहीं वहां की मिट्टी में छिपा प्रकृति का सुनहरा रूप भी लुप्त होता जा रहा है।

सावन की पुरवइया गायब ..। / पोखर,ताल, तलइया गायब ..।
कट गए सारे पेड़ गाँव के../ कोयल और गौरइया गायब...![4]

आधुनिकीकरण ने गांवों के कच्चे घरों को तो पक्का बना दिया, पर घर की आत्मा का हिस्सा, घरों के आंगन ही गायब हो गए है। सोहर, कजरी, फाग जैसे उत्सव और उसमें होने वाले बिरहा नाच भी गायब हो गए। कभी लोगों से घिरी घर की चौपाई अब अपनत्व के अभाव गुमसुम बैठी है, उसपर बैठकर रह याद किए जानेवाले दोहा, सवैया के गीत गायब हो चुके है। एटीएम मशीन ने हमें हर जगह पर पैसा उपलब्ध कराया, पर अर्थज्ञान सिखाने वाले बुजुर्ग घर में न होने के कारण उनके बटुए के पैसा, आना, पइया गायब हो गए। जहां कभी दरवाजे पर बैल, भैंस और गाएं बंधी होती थी, जिनका होनाव्यवित की सधनता काद्योतक था, आज उनकी जगह पर ऐश–आराम का प्रतीक बनकर कार खड़ी हो चुकी है। सुबह के चना–चबैना, लइया का स्थान चाय की चुस्की ने लिया। पर हद तो तब होती है, जब –

भाभी देख रही हैं रस्ता....
शहर गए थे, भइया गायब...।[5]

आधुनिक हिंदी गज़लकारों में देवमणि पांडेय का अपना एक स्थान है। उनकी ग़ज़लों में एक और जहां महानगरों के प्रति प्रेम छलकता है, वहीं दूसरी ओर गांव के आंचल से दूरी की बेचैनी व्यथा बन टपकती है। आज भी भारत को गांवों का देश कहा जाता है। पर वास्तविकता यह है कि शहरीकरण के चलते गांवों के नक्शे केवल कागजों तक ही सीमित है। बहुत कुछ पाने की आशा में नौजवान गांवों को छोड़ कभी न लौटने के लिए शहरों की ओर मुड रहे है। युवाओं के साथ गांव की रौनक, उजाला भी लुप्त हो गया। गांव की गलियां वीरान हो गई। बच्चों का बचपन छीन गया और चंद पैसों के लिए छोटे बच्चे मजदूर बन गए। पर गांव के बिछौने उसी आत्मीयता से अपनों की राह देख रहे है। कभी कहकहों से गूंजती शाम की चौपालें से भरे गांव आज सिर्फ यादों में बचे हुए है।

हाल इक–दूजे का कोई पूछने वाला नहीं,
क्या पता अगले बरस क्या हाल होगा गांव का।
सोच में डूबे हुए है गांव के बूढे दरख्त,
वाकई क्या लूट गया है कुल असासा गांव का।[6]

महानगरों की बाहरी चमक–धमक को देखकर उसमें खोनेवाला आज का इन्सान अपनी वास्तविकता को, इन्सानियत को भूलता जा रहा है। इस नई दुनिया के रंग में रंगकर हम दोस्ती–यारी को भूल गए। उन्नति की खोज में हर किसी की राह कुछ ऐसी अलग हुई कि एकदूसरे का साथ निभाना भी हम भूल गए। सूचना–प्रोद्योगिकी की क्रांती वाले इस युग ने बच्चों को स्मार्ट बनाने के लिए उनके हाथों में मोबाइल तो दिए, पर उनकी मासूमियत को जिंदा रखने, प्रकृति से उन्हें जोडने, बहते पानी में कागज की नाव को चलाने जैसी कला को भूला दिया।

धन–दौलत ने हमको इतने खुशियों के सामान दिए,
खेत–फसल, कोयल–गोरैया गाँव सुहाना भूल गए।
हँसते–गाते, धूम मचाते जिनमें बचपन गुजरा था,
शहर में आकर उन गलियों में आना–जाना भूल गए।[7]

आजादी के 70 साल बाद भी ग्रामों की दशा में विशेष परिवर्तन नहीं आया। अपने श्रम से सबका पेट भरने वाले इस देश के कई किसान आज आसमानी और सुल्तानी ताकतों के अधीन है। अकाल तो मानो उसके भाग्य का अंग बन चुका है। ऐसे में देवमणि पांडेय की सूखा पीड़ित किसान पर लिखी यह ग़ज़ल किसानों के संत्रास को प्रत्यक्ष करती है। जब बादल नहीं बरसते, तब मिट्टी के खेत उजड़ चट्टानों में परिवर्तित होते है। मौसम के बदलाव के साथ ही किसान दहशत में आ जाता है, उसके खून–पसीने से खेत–खलिहानों में उपजी उसकी फसलें उसी के आंखों के सामने दम तोड़ती है। अपनी आंखों से खेती की यह बरबादी, किसान के भविष्य को ओर काली स्याह से रंग देती है। सभी ओर से निराश थका–हारा यह किसान अन्य किसी आशा को न पाकर रस्सी पर झूल कर जीवन का अंत कर देता है। किसी एक किसान का यूं फांसी पर झूलना अन्य मजदूर–किसानों में भी खौफ को भर देता है। पर कृषकों की मौत जड बन चुकी हुकूमत की नींव को भी हिला नहीं पाती। जिसके कारण गांव बेजान बनते जा रहे है।

की जगह अपनी जिंदगी सजाने–संवारने में लगे है। मनरेगा की मजूरी को हडपकर नहरों का अस्तित्व केवल कागज पर रखा जाता है। महिलाओं को सत्ता में मिले आरक्षण की असलियत भी गजलकार खोलता है। जहां –

लछमिनिया थी चुनी गई परधान मगर / उसका 'पती प्रधान' देखकर आया हूँ।
बंगले के अंदर में जाने क्या होगा /अभी तो केवल लॉन देखकर आया हूँ।[3]

देश की सदन में गांवों के विकास को लेकर हर रोज चर्चा होती है, पर इस भ्रष्ट व्यवस्था में भ्रष्ट हो चुकी देश की महानता गजलकार की आंखों से छूटी नहीं।

आधुनिकीकरण की इस तेज आंधी ने जहां हमें कई नई चीजों से वाकिफ किया वहीं आंख खोलकर देखें तो हमसे बहुत कुछ छीन लिया है। गांवों का रंग–ढंग बदलकर वहां शहरों का फैशन अपनी जगह बना रहा है। गांवों की संस्कृति, लोकजीवन, रीति–रिवाज, परंपराएं इतना ही नहीं वहां की मिट्टी में छिपा प्रकृति का सुनहरा रूप भी लुप्त होता जा रहा है।

सावन की पुरवइया गायब ...। / पोखर,ताल, तलइया गायब...।
कट गए सारे पेड़ गाँव के../ कोयल और गौरइया गायब...![4]

आधुनिकीकरण ने गांवों के कच्चे घरों को तो पक्का बना दिया, पर घर की आत्मा का हिस्सा, घरों के आंगन ही गायब हो गए है। सोहर, कजरी, फाग जैसे उत्सव और उसमें होने वाले बिरहा नाच भी गायब हो गए। कभी लोगों से घिरी घर की चौपाई अब अपनत्व के अभाव गुमसुम बैठी है, उसपर बैठकर रह याद किए जानेवाले दोहा, सवैया के गीत गायब हो चुके है। एटीएम मशीन ने हमें हर जगह पर पैसा उपलब्ध कराया, पर अर्थज्ञान सिखाने वाले बुजुर्ग घर में न होने के कारण उनके बदुए के पैसा, आना, पइया गायब हो गए। जहां कभी दरवाजे पर बैल, भैंस और गाएं बंधी होती थी, जिनका होनाव्यक्ति की सधनता काद्योतक था, आज उनकी जगह पर ऐश–आराम का प्रतीक बनकर कार खडी हो चुकी है। सुबह के चना–चबैना, लइया का स्थान चाय की चुस्की ने लिया। पर हद तो तब होती है, जब –

भाभी देख रही हैं रस्ता....
शहर गए थे, भइया गायब...![5]

आधुनिक हिंदी गजलकारों में देवमणि पांडेय का अपना एक स्थान है। उनकी ग़ज़लों में एक और जहां महानगरों के प्रति प्रेम छलकता है, वहीं दूसरी ओर गांव के आंचल से दूरी की बेचैनी व्यथा बन टपकती है। आज भी भारत को गांवों का देश कहा जाता है। पर वास्तविकता यह है कि शहरीकरण के चलते गांवों के नक्शे केवल कागजों तक ही सीमित है। बहुत कुछ पाने की आशा में नौजवान गांवों को छोड़ कभी न लौटने के लिए शहरों की ओर मुड रहे है। युवाओं के साथ गांव की रौनक, उजाला भी लुप्त हो गया। गांव की गलियां वीरान हो गई। बच्चों का बचपन छीन गया और चंद पैसों के लिए छोटे बच्चे मजदूर बन गए। पर गांव के बिछौने उसी आत्मीयता से अपनों की राह देख रहे है। कभी कहकहों से गूंजती शाम की चौपालें से भरे गांव आज सिर्फ यादों में बचे हुए है।

हाल इक–दूजे का कोई पूछने वाला नहीं,
क्या पता अगले बरस क्या हाल होगा गांव का।
सोच में डूबे हुए है गांव के बूढे दरख्त,
वाकई क्या लूट गया है कुल असासा गांव का।[6]

महानगरों की बाहरी चमक–धमक को देखकर उसमें खोनेवाला आज का इन्सान अपनी वास्तविकता को, इन्सानियत को भूलता जा रहा है। इस नई दुनिया के रंग में रंगकर हम दोस्ती–यारी को भूल गए। उन्नति की खोज में हर किसी की राह कुछ ऐसी अलग हुई कि एकदूसरे का साथ निभाना भी हम भूल गए। सूचना–प्रोद्योगिकी की कांती वाले इस युग ने बच्चों को स्मार्ट बनाने के लिए उनके हाथों में मोबाइल तो दिए, पर उनकी मासूमियत को जिंदा रखने, प्रकृति से उन्हें जोड़ने, बहते पानी में कागज की नाव को चलाने जैसी कला को भूला दिया।

धन–दौलत ने हमको इतने खुशियों के सामान दिए,
खेत–फसल, कोयल–गौरैया गाँव सुहाना भूल गए।
हँसते–गाते, धूम मचाते जिनमें बचपन गुजरा था,
शहर में आकर उन गलियों में आना–जाना भूल गए।[7]

आजादी के 70 साल बाद भी ग्रामों की दशा में विशेष परिवर्तन नहीं आया। अपने श्रम से सबका पेट भरने वाले इस देश के कई किसान आज आसमानी और सुल्तानी ताकतों के अधीन है। अकाल तो मानो उसके भाग्य का अंग बन चुका है। ऐसे में देवमणि पांड़ेय की सूखा पीड़ित किसान पर लिखी यह गजल किसानों के संत्रास को प्रत्यक्ष करती है। जब बादल नहीं बरसते, तब मिट्टी के खेत उजड चट्टानों में परिवर्तित होते है। मौसम के बदलाव के साथ ही किसान दहशत में आ जाता है, उसके खून–पसीने से खेत–खलिहानों में उपजी उसकी फसलें उसी के आंखों के सामने दम तोडती है। अपनी आंखों से खेती की यह बरबादी, किसान के भविष्य को ओर काली स्याह से रंग देती है। सभी ओर से निराश थका–हारा यह किसान अन्य किसी आशा को न पाकर रस्सी पर झूल कर जीवन का अंत कर देता है। किसी एक किसान का यूं फांसी पर झूलना अन्य मजदूर–किसानों में भी खौफ को भर देता है। पर कृषकों की मौत जड बन चुकी हुकूमत की नींव को भी हिला नहीं पाती। जिसके कारण गांव बेजान बनते जा रहे है।

अब गाँव की आँखों में बदरंग फिजाएँ हैं,
खिलती है धनक लेकिन शहरों की दुकानों में।
क्यूँ रूठ गई कजरी, दिल जिसमें धड़कता था,
क्यूँ रँग नहीं कोई अब बिरहा की तानों में। [8]

गांव की माताओं को समर्पित देवमणि पाडेय की गजल'अंगनाई, दहलीज, दुआरी' सामाजिकता के नाम पर गावों की नारीओं की अनदेखी कैद को दर्शाती है। शहर के एक समारोह में गांव की एक परिचित महिला से गजलकार की जब मुलाकात हुई, तो हालचाल पूछने पर वह महिला कहती है –"मां–बाप गुजर गए तो मायके से रिश्ता खत्म। बेटे परदेस बस गए। अब गाव में अकेले वह किसी तरह दिन काट रही है।" यह गजल ऐसी ही नारीयों के हालचाल को दर्शाती है। जिनके लिए कभी वह दुनिया समान थी, उसी मां को बच्चें अकेला छोड देते है। एक सारी पर हर जाडा काटनेवाली इस मां को दुनिया बेचारी कहती है।

सात समन्दर आँख मे फिर भी /सूखी है मन की फुलवारी
किसे पड़ी है जो ये देखे /कैसे तुमने उम्र गुजारी [9]

दुख से रिश्ता जोड चुकी यह मां तनहाई में सुख–दुख को भले ही जीवन का चक मान ले, किंतु गजलकार चाहता है कि वह मां दुनियादारी को सीख ले, क्योंकि उसके चाहने पर ही उसकी तकदीर बदलेंगी अन्यथा नहीं।

गांवो को अभाव की धरती मान कर महानगरों की छांव में आने वाले हर मनुष्य को महानगर जिंदा रखता है, पर गांवों के समान अपनत्व नहीं दे पाता।अतः महानगर भले ही व्यक्ति को बर्बाद न करें, पर वे उसे मन से आबाद भी नही बनाते। सब कुछहोते हुए भी व्यक्ति के अंदर बेचैनी, बेहाली बनी रहती है। गांवों का खुला पर महानगर में आकर व्यक्ति को समय की जंजीरों से बाध देता है।

रहता हूँ, मगर शहर में आबाद नहीं हूँ /बेचौन हूँ, बेहाल हूँ, बर्बाद नहीं हूँ
जंजीर कहीं कोई दिखाई नहीं देती / उड़ने के लिए फिर भी मैं आजाद नहीं हूँ [10]

औद्योगिकीकरण ने बडी रफ्तार से इन्सान की दुनिया को उजाड़ना शुरू किया। कल–कारखानों के धुएं ने आसमान को गायब कर दिया। परिंदे के आशियां जिस पर बसे थे, वे पेड़ गायब हो रहे है। ठिक वैसे ही रोजगार की तलाश मे गांव छोडकर बाहर पडनेवाला युवा वर्ग जब तक वापस लौटता है, तब तक गांव में बसा उसका संसार उजड़ जाता है। शहर ऐसे जंगलों में तब्दील होते जा रहे है, जहां सिर्फ शोर है, जो सच को दबाये जा रहा है। ऐसे में भी प्रेम जैसी भावना पर यकीन करते हुए सुल्तान अहमद कहते है –

डरके तन्हाइयों से सोचोगे, लोग रहने लगे कहाँ गायब।
प्यार गर प्यार है तो उभरेगा, लाख उसके करो निशाँ गायब। [11]

गांव छोड़कर अपने आप को बडे गर्व से नगरीय–महानगरीय कहने वाले यह भूल जाते है कि गांव से आनेवाले दो–चार दानों के दम पर ही उनकी जीवन की डोर है। जिस उन्नति को पाने उन्होंने गांव छोड़ा, उसी गांव के सुनसान घर में तनहाई में जीती बूढी मां शहर बसे अपनों के लिए हमेशा दुआओं के खजाने भेजती रहती है। गांव के छोटे लोगों के न सिर्फ आंगन बल्कि मन भी बडा होता है, जबकि अपने आप को बड़ा कहने वाले शहरवालों के आशियाने और मन भी छोटे होते है। गांव छोडने की गिला मन में लिए तब गज़लकार कहता है –

गांव के कच्चे घरों मं छोड़ कर सब्रों–सुकूं
आ गए हम देखिए रोटी कमाने शहर में
गांव के शाम–ओ– सहर टांगे है इक दीवार पर
बस यही दो चार है मंजर सुहाने शहर में [12]

कभी भारतीय संस्कृति का उज्वलतम रूप जिन गांवों में देखा जाता था, बदलते समय ने उन्हीं गांवों का अक्स बदलकर रख दिया। बहुत कुछ पाने की लालसा से गांवों से शहरों की ओर पलायन तेजी से होने लगा। उपर से भ्रष्ट सरकारी योजना ने संविधान प्रदत्त अधिकारों पर जब डाके डालने शुरू किए, तो कभी चैन की बंसी बजाने वाले गांव धीरे–धीरे नक्सलवाद, आतंकवाद की छाया में, बंदुक, बारूद के बादलों में सहमें हुए जिंदगी काटने लगे। बल्ली सिंह चीमा की गज़लकी निम्न पंक्तियां गांव की इसी वास्तविकता की ओर इशारा करती है।

गांव मेरा आजकल दहशतजादा है दोस्तो
इसकी किस्मत में न जाने क्या लिखा है दोस्तो [13]

इस तरह 21 वी सदी की गज़लों में ग्राम्य विमर्श के विविध रूप,विविध विषयों के साथ देखे जा सकते है। यह गजलें गांवों के बारे में आम पाठकों की उस काल्पनिक दुनिया पर छांई धुंध को हटाकर ग्रामिण परिवेश की वास्तविकता को सामने लाने में सहायता करती है।

संदर्भ –

1. हिंदी गजल–गजलकारों की नजर में – सरदार मुजावर –पृ. 29

2. हिंदी गजल–गजलकारों की नजर में – सरदार मुजावर –पृ. 31
3. गांवों का उत्थान देखकर आया हूँ – डी.एम.मिश्र
4. सावन की पुरवइया गायब– देवमणि पांडेय
5. सावन की पुरवइया गायब .. – देवमणि पांडेय
6. कागजों में है सलामत अब भी नक्शा गांव का –देवमणि पांडेय
7. इस दुनिया के रंग में ढलकर हम याराना भूल गए – देवमणि पांडेय
8. मौसम ने कहर ढाया दहशत है किसानों में – देवमणि पांडेय
9. अँगनाई, दहलीज, दुआरी – देवमणि पांडेय
10. रहता हूँ मगर शहर में आबाद नहीं हूँ – उपेन्द्र कुमार
11. जाने कब होगा ये धुआँ गायब? – सुल्तान अहमद
12. गांव से आते हैं जो दो चार दाने शहर में–रविकांत अनमोल
13. गांव मेरा आजकल दहशतजादा है दोस्तो–बल्ली सिंह चीमा
14. हिंदी गजल का वर्तमान दशक – सरदार मुजावर
15. हिंदी गजल– दशा और दिशा – डॉ. नरेश
16. पिछले डेढ दशक की हिंदी ग़ज़ल–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन सन 1991 से 2005– शोधार्थी गुप्ता महेशचंद्र– अप्रकाशित शोधप्रबंध
17. दैनिक जनसत्ता – 5 नव्हंबर 2018
18. हिंदी कविता कोश –www.kavitakosh.com

सारांश –
21 वी सदी की ग्राम्य विमर्श पर आधारित ग़ज़लों में स्वाभाविकता झलकती है। यहगज़ले किसी विशिष्ट वर्ग के मखमलीपन, शब औ' शराब के किस्सों का हिस्सा नहीं। ग्रामीण परिवेश की स्थिति–गति का यथार्थवादी वर्णन करते समय इनमें वर्ण्य–विषयों की विविधता दिखाई देती है, जिसके माध्यम से ग़ज़लकार कभी पाठक को नया संदेश देता है, तो कभी उसे हौसला बंधाता है, तो कभी उसकी आंखों अंजन भर देता है। जिस उद्देश्य की पूर्ति हेतू इन ग़जलों का विधान हुआ, उसके भावसंप्रेषण में कोई रूकावट नहीं आती। शब्दों के आडंबर से दूर ग्राम्य विमर्श की यह गज़लें सहज बोधगम्य बन पड़ी है। एक ओर यह समाज, व्यवस्था की विसंगतियों–विद्रूपताओं पर व्यंग्य के तीखे बाण चलाती है, वहीं इनकी विचारों की प्रौढता इसे सहज पाठकों के दिलों में उतारती है। कविता के समान ग़ज़ल विधा भले ही उस मकाम को हासिल नहीं कर पाई है, फिर भी उसमें काव्य के समान सौंदर्यतत्व को पकड़ा गया है। कभी 'औरतों से प्यार भरी बातचीत' तक सीमित अर्थ लेकर चलने वाली गज़ल आज जीवनतत्वों से लबालब भरी साहित्य विधा सिद्ध हो रही है। जिसे देख कह सकते है कि नवाबों–बादशाहों के दरबारों से निकलकर जनाश्रय पानेवाली गज़ल सामाजिक यथार्थ का दर्पन बन रही है।

शोधकर्ती,
डॉ.श्वेता चौधारे,
हिंदी विभागाध्यक्षा,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, सोनई
भ्रमणध्वनि – 9823268987
choudhares@gmail.com